गुप्तकाल में शिक्षा एवं साहित्य

डा0 राम कुमार[1]
पूर्व अतिथि प्रवक्ता[1]
बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर
विश्वविद्यालय[1], लखनऊ[1]

किसी भी युग की शिक्षा–संस्थाओं का अध्ययन किये बिना, उस युग के साहित्य के स्वरूप को समझे बिना, विज्ञान एवं तकनीकि तथा ललितकलाओं की विविध शाखाओं में उसकी अवप्तियों के ज्ञान के बगैर, उस युग की आत्मा, महत्ता एवं विशेषताओं को समझना एक कठिन कार्य है। अतः क्रमवार इनका विवरण निम्न प्रकार है।

1. शिक्षा

प्राचीन काल में शिक्षा का केन्द्र बिन्दु व्यक्तिगत अध्यापक या आचार्य हुआ करते थे जो अभिभावकों से प्राप्त दक्षिणा से संतोष करते थे। पुरोहित या पुजारी के रूप में भी उन्हें कुछ आय हो जाया करती थी। यदा–कदा उन्हें राजाओं एवं श्रीमंतो से भी अनुदान मिल जाया करते थे। प्रायः राजधानियां या तीर्थ–स्थान शिक्षा के केंद्र बने हुए थे। अतः प्राचीन काल से ही वहाँ ऐसे ब्राह्मणों की संख्या अधिक थी। गुप्त युग में भी यही स्थिति थी। पाटलिपुत्र, वल्लभी, उज्जयिनी, पद्मावती, कौशाम्बी, अहिच्छत्र, वैशाली, वाराणसी, अयोध्या, मथुरा, नासिक एवं काँची विद्या के प्रमुख केंद्र थे। काँची अपनी घटिकाओं के लिए विख्यात थी। अयोध्या के ब्राह्मण, मंत्र, सूत्र और भाष्य के प्रवचन में प्रवीणता के लिए प्रसिद्ध थे।[1] काँची ब्राह्मण एवं बौद्ध दोनों विद्याओं का केंद्र था। काँची का एक प्रसिद्ध विद्वान धर्मपाल छठीं शती में नालंदा के विख्यात महाविहार का अध्यक्ष बना। गुप्तकाल में नालंदा का महत्व काफी बढ़ गया था क्योंकि तक्षशिला का महत्व धीरे–धीरे काफी कम हो गया था। पाँचवी शती के प्रारंभ में जब फाह्यान ने तक्षशिला की यात्रा की तो उसे यहाँ शैक्षणिक महत्व की कोई बात नहीं मिली थी।[2]

राजाओं से अग्रहार के रूप में प्राप्त ग्रामों में भी पाठशालाएं होती थीं जिनका संचालन दानग्राही ब्राह्मण विद्वान करते थे। इन पाठशालाओं में प्रारम्भ से उच्च शिक्षा तक की व्यवस्था

1 एपीग्रैफिया इण्डिका, X, पृ0 72
2 वाटर्स, 2, पृ0 168–69

रहती थी और दूर–दूर के विद्यार्थी वहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए आया करते थे। कलिंग का राजा उपवर्मा इस बात का ध्यान रखता था कि उसके राज्य में अग्रहार ग्रामों की संख्या 36 से कम न हो।[1] अग्रहार गाँवों के गृहीता केवल अपने अध्ययन में ही तल्लीन नहीं रहते थे अपितु उनमें से अनेक ऐसे आचार्य थे जो दूर–दूर से विद्यार्थियों को आकृष्ट कर सकते थे। गुप्तकाल में बौद्ध विहार भी शिक्षा के केंद्र बनने लगे थे। नालंदा महाविहार बौद्ध शिक्षा का केंद्र था, जहाँ महायानी, दार्शनिक नागार्जुन, असंग, वसुबंधु एवं दिग्नांग आदि के ग्रंथों का पठन–पाठन होता था। यहाँ पर हिंदू एवं जैन दर्शनों का भी गहन अध्ययन कराया जाता था, ताकि यहाँ से शिक्षा प्राप्त विद्वान हिंदू तथा जैन दार्शनिकों के साथ शास्त्रार्थ करने में समर्थ हो सकें। यहाँ पर विद्यार्थियों के खाने–पीने रहने एवं पढ़ने की निःशुल्क व्यवस्था थी। पिष्टपुरम के अग्रहार गाँव के ब्राह्मण (छठी शती में) विद्वान एवं गुरु दोनों रूपों में प्रसिद्ध थे।[2] लगभग 500 ईस्वी में पाण्डुरंग पल्ली दान का ग्रहीता सैकड़ों ब्राह्मणों का अध्यापक था।[3] अतः इस युग में अग्रहार ग्राम प्रायः उच्च शिक्षा के केंद्र थे। यदि उपवर्मा जैसा छोटा राजा 36 अग्रहार गाँवों का पालन करता था तो गुप्तों ने इससे अधिक गाँवों को संरक्षण दिया होगा।

इस काल में वैदिक साहित्य का अध्ययन क्रमशः शिथिल होता जा रहा था। धर्मशास्त्र, पुराण एवं दर्शन के प्रति लोगों की रुचि अधिक थी। पुराणों को नया रूप प्रदान कर उन्हें तत्कालीन धार्मिक जीवन का आधार बनाया जा रहा था। समाज के धार्मिक जीवन के नियंत्रण में तत्कालीन स्मृतियों का भी योगदान था। शास्त्रार्थ में विभिन्न धर्मों के दार्शनिक प्रायः अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करते थे। व्याकरण एवं ज्योतिष भी पाठ्य–क्रम के महत्वपूर्ण अंग थे। गणित तथा फलित ज्योतिष शनैः–शनैः लोकप्रिय विषय बनते जा रहे थे।[4] इस काल में अग्रहारों की संख्या काफी थी तथा इसमें बड़े मनोयोग से शिक्षा दी जाती थी। अतः ब्राह्मणों में संस्कृति एवं विद्वता का सामान्य स्तर बहुत ऊँचा था। किंतु क्षत्रियों और वैश्यों में यह अवस्था नहीं थी। उनका उपनयन धीरे–धीरे बन्द हो रहा था। इससे केवल उनके वैदिक अध्ययन को ही नहीं अपितु उनकी सांस्कृतिक शिक्षा को भी क्षति पहुँची। इस काल में कन्याओं के उपनयन का लोप होने के कारण स्त्री शिक्षा को भी निश्चित रूप में धक्का लगा।

---

1 एपीग्रैफिया इण्डिका, XII, पृ0 5
2 वही, XVIII, पृ0 98
3 मैसूर आर्कियोलॉजिकल रिपोर्ट्स, 1929, पृ0 197
4 अल्तेकर, एजुकेशन इन ऐंशियण्ट इण्डिया, पृ0 112

इनके विवाह की उम्र 12 वर्ष हो जाने के कारण स्थिति और भी खराब हो गयी। अतः इन्हें गहन शिक्षा देना असंभव हो गया। फिर भी, सम्पन्न परिवारों में कन्याओं को उच्च शिक्षा के लिए विशेष शिक्षक रखे जाते थे।

तकनीकी शिक्षाएँ संभवतः घर पर ही दी जाती थी, चूँकि अधिकांश पेशे आनुवंशिक हो गये थे। फलतः तकनीकी शिक्षा का केन्द्र घर रहा होगा। जब शिक्षा परिवार में संभव नहीं नहीं होती थी तो कला विद्यार्थी शिल्प की शिक्षा देने वाले गुरुओं के पास जाते थे। काल के प्रारंभिक भाग में वे शिष्य को निःशुल्क शिक्षा देते थे लेकिन उत्तरार्द्ध में शिक्षण के प्रतिफल के रूप में अपने कारखानों में मुफ्त काम करवाते थे।[1]

प्राथमिक शिक्षा के सम्बंध में बहुत स्पष्ट जानकारी तो नहीं है लेकिन अधिक संभावना है कि इसे भी परिवार में ही दिया जाता हो। इस युग में उपनयन और वैदिक अध्ययन का तात्पर्य पढ़ने–लिखने की योग्यता ही था। यह ब्राह्मणों के लिए आवश्यक था, अतः उनमें साक्षरता अवश्यमेव बहुत अधिक रही होगी। क्षत्रियों एवं वैश्यों में उपनयन क्रमिक रूप से लोप होती जा रही थी। फलतः उनमें निरक्षरता बढ़ने लगी होगी। शूद्र और अस्पृश्य निरक्षर थे। प्राथमिक शिक्षा पाँच वर्ष की आयु में प्रारम्भ होती थी और 'दारकाचार्य' नामक शिक्षक इसे प्रदान करते थे। प्रायः जो अध्यापक वैदिक मंत्र पढ़ाते थे वे ही विद्यार्थियों को पढ़ना–लिखना और हिसाब भी सिखाते थे। अनेक गाँवों में लिपिशालाएं या प्राथमिक पाठशालाएं थीं। धनी परिवारों के बच्चे तख़्तियों पर किसी रंग से लिखा करते थे, गरीब बच्चे पाठशालाओं में रेत की बारीक मिट्टी से दबी जमीन पर ऊँगली से अक्षर लिखते थे। प्राथमिक पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में मुख्यरूप से पढ़ना– लिखना और गणित शामिल होती थी।

गुप्तकाल के पूर्व, जब प्राकृत भाषा, स्थानीय भाषा के रूप में बदलनी प्रारम्भ हुई, उसी समय राष्ट्रभाषा के रूप में संस्कृत की आवश्यकता पड़ी। धार्मिक साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत भाषा का प्रयोग महायानी बौद्धों ने गुप्तकाल के एक शताब्दी पूर्व से ही प्रारंभ कर दिया था।[2] कुछ विदेशियों ने भी संस्कृत को अपना लिया था, इसका सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण शक महाक्षत्रप रुद्रदामन् का जूनागढ़ अभिलेख है। यह स्वयं संस्कृत के अध्ययन में बड़ी रुचि लेता

1 नारद स्मृति अध्याय 5, पृ0 16–21

2 ललित विस्तर एवं आर्यशूर की जातक माला संस्कृत में लिखे गये ग्रंथ है।

था। गुप्तकाल में इसी संस्कृत भाषा को प्रयोज्य भाषा बना लिया गया।[1] इसी शती में ही प्रचलित हो चुकी, नाट्य कला एवं अलंकार शास्त्र पर ग्रंथ गुप्तकाल में लिखे जाते थे, जो कि भामह, रूद्रट तथा दण्डी की रचनाओं में मिलता है।[2] शायद यह अभी शैशवावस्था में ही था।

साहित्य एवं साहित्यकार

भास गुप्तकालीन संस्कृत–साहित्य के मनीषियों में कालक्रम से भास का नाम प्रथम आता है। अधिकतर विद्वानों ने इनका समय 300 ईसवी के आस–पास स्वीकार किया है। भास के तेरह नाटक उपलब्ध होने की बात स्वीकार की जाती है। हालांकि विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि ये नाटक भास के नहीं अपितु किसी दूसरे दर्जे के नाटकार के हैं। यह पक्ष यह निर्देश करता है कि इनमें से किसी नाटक का लेखक भास नहीं है, जबकि विद्वानों का दूसरा वर्ग मानता है कि त्रिवेन्द्रम–नाटकों के स्वप्नवासवदत्ता में, वे अधिकांश विशेषताएँ पायी जाती हैं, जिनका प्राचीन आलोचकों एवं कवियों ने भास के इस नाम के नाटक के बारे में उल्लेख किया है, और तेरह त्रिवेंद्रम नाटकों की भाषा तथा नाटकीय पद्धति में इतना विलक्षण साम्य है कि इन सबका लेखक भास ही होना चाहिए।[3] भास के तेरह नाटकों के नाम निम्नलिखित हैं– मध्यमव्यायोग, दूत घटोत्कच, कर्णभार, ऊरुभंग पंचारात्र, दूतवाक्य, बालचरित, प्रतिमा, अभिषेक, अविमारक, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्ता तथा चारुदत्त। इनमें से अधिकांश नाटकों के विषय रामायण, महाभारत से लिये गये हैं किंतु भास ने उन्हें नाटकीय बनाने में पर्याप्त कौशल दिखाया है। पात्र चित्रण बड़ा प्रभावजनक है और भाषा शैली सरल और सरस है।

कालिदास

संस्कृत साहित्य के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं प्रतिभावान कवि कालिदास के सम्बन्ध में अधिकतम् संभावना यह है कि वह चंद्रगुप्त द्वितीय का समकालीन था और लगभग 360–420 ईस्वी के बीच रहा होगा। आधुनिक अनुसंधान अंतिम रूप से कालिदास की तिथि का निश्चय करने में सफल नहीं हो पाया है। एक पक्ष की धारणा है कि वह ईसापूर्व पहली शती में हुआ; दूसरे पक्ष की मान्यता है कि वह गुप्त युग में हुआ। पहला पक्ष कवि को विक्रम

1 काव्य मीमांसा, पृ0 50
2 कीथ, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 375
3 काणे, विविध ज्ञान विस्तार, 1929, पृ0 97–102

का समकालीन बताता है। कालिदास ने शुंगकाल के सम्बन्ध में इतना सूक्ष्म ब्योरा दिया है जो एक समकालीन के लिए ही संभव है। किंतु कालिदास का संरक्षक विक्रम, द्वितीय चन्द्रगुप्त के भी होने का अनुमान किया गया है और पिछले काल का भी एक कवि ऐसे ज्ञात स्रोतों से–जो अब हमें उपलब्ध नहीं है, का सूक्ष्म ब्योरा देता है। पहले पक्ष के मानने वाले अश्वघोष और कालिदास के कुछ पद्यों के सर्वस्वीकृत सादृश्य पर विशेष बल देते हुए कहते हैं कि यदि हम कालिदास को गुप्त युग में रखते हैं तो हमें यह कल्पना करनी पड़ेगी कि संस्कृत के महानतम कवि ने अपने कुछ विचार बौद्ध लेखक से ग्रहण किये हैं। यह तथ्य भी बहुत निर्णायक नहीं प्रतीत होता। सब देशों के अन्य महाकवियों की भाँति कालिदास ने अपने कुछ विचार अपने पूर्ववर्तियों से ग्रहण किये होंगे, फिर भी लगभग प्रत्येक उदाहरण में कालिदास ने मूलभाव को अधिक उत्कृष्ट बना दिया है। साहित्यों से पता चलता है कि कालिदास ने राजा प्रवरसेन के सेतुबंध काव्य का संशोधन किया था। अधिक संभावना है कि सेतुबंध का लेखक वाकाटक राजा प्रवरसेन द्वितीय के अतिरिक्त कोई और नहीं था। यह अधिक संभव है कि कालिदास कुछ समय के लिए उसका अध्यापक रहा हो। वाकाटकों में रामगिरि के रामगिरि स्वामी की बड़ी पूजा होती थी और यह संभव है कि राजपरिवार के साथ इस स्थान की यात्रा में कालिदास को यह विचार आया कि वह इस पर्वत को अपने मेघदूत के नायक के निर्वासन का स्थान बनाये। फिर भी यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि कालिदास को गुप्त युग में रखने के लिए हमारे पास अब तक कोई निर्णायक प्रत्यक्ष एवं निश्चित साक्ष्य नहीं है।

कालिदास के मुख्य ग्रंथ ऋतु संहार मालविकाग्निमित्र, कुमारसंभव, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तलम् तथा रघुवंशम् हैं। यह संभवतः उपर्युक्त क्रम से ही रचे गये थे। 'कुन्तलेश्वरदौत्य' नाटक भी कालिदास की रचना मानी जाती है। हालांकि यह अभी तक अप्राप्य है। यह संभव है कि कालिदास ने प्रवरसेन के सेतुबंध का संशोधन किया हो। प्रायः सर्वसम्मत से कालिदास को संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ कवि स्वीकार किया गया है। वह इस प्रतिष्ठा का अधिकारी भी है। लालित्य एवं रस उसकी कविता की विशेषताएं हैं। उसकी रचनाएं अद्भुत अलंकारों से भूषित है। ये हमें अपने सौंदर्य, उपयुक्तता और विभिन्नता से प्रभावित करती हैं। पात्र चित्रण में बहुत कम कवि कालिदास की समानता कर सकते है। शृंगार एवं करुण रस की भावनाओं का चित्रण करने में वह अद्वितीय है। उसका प्रकृति प्रेम अद्वितीय है। कालिदास ने अपनी रचना

ऋतु संहार में षट् ऋतुओं का वर्णन किया है। मेघदूत में अपनी पत्नी से विलग एक यक्ष की विरह–व्यथा का तथा वर्षा–ऋतु के मेघ को दूत बनाकर अपना विरह–संदेश उसके पास ले जाने का मार्मिक आग्रह है। संस्कृत के गीति–काव्यों में मेघदूत को अति उच्च स्थान प्राप्त है। कुमारसंभव का कथानक पार्वती और शिव के प्रेम से प्रारम्भ होकर कुमार (कार्तिकेय) के जन्म के साथ समाप्त होता है। इस महाकाव्य में हिमालय का वर्णन संस्कृत साहित्य में सौन्दर्य की दृष्टि से अद्वितीय माना जाता है। कवि का दूसरा महाकाव्य रघुवंश है जिसका कथानक रामायण एवं पुराणों पर आधारित है। इसमें पुराण प्रसिद्ध इक्ष्वाकु नरेशों की चर्चा है जिसमें महाराज रघु को आधार मानकर उनके पूर्वजों एवं वंशजों का कीर्तिमान हुआ है। काव्य–शास्त्र की परिभाषा के अनुसार इसे सर्वोत्तम महाकाव्य कहा गया है।

कालिदास के नाटकों में कालक्रम की दुष्टि से मालविकाग्निमित्र प्रथम नाटक है। इसमें शुंग नरेश अग्निमित्र एवं विदर्भ राजकुमारी मालविका के प्रेम का सजीव चित्रण है। इसी नाटक में कुछ तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। विक्रमोर्वशीय में चंद्रवंशी नरेश पुरुरवा एवं उर्वशी नामक अप्सरा के प्रेम, विरह एवं पुनर्मिलन का कथानक बड़े कौशल के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक के कथानक के आधार ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, विष्णु एवं भागवत पुराण हैं जिसमें कवि ने अपनी कल्पना का पुट देकर उसे अत्याधिक रोचक बना दिया है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् न केवल संस्कृत, वरन् समस्त विश्व–साहित्य के उत्कृष्टतम् नाटकों में है। इसमें कवि के नाट्य कौशल की चरम अभिव्यक्ति है। यह नाटक महाभारत में वर्णित कुरु–नरेश दुष्यंत एवं शकुन्तला की प्रेम कथा पर आधारित है। कवि ने महाराज दुष्यन्त के रूप में एक आदर्श राजा और शकुंतला के रूप में एक आदर्श भारतीय नारी का चित्रण प्रस्तुत किया है।

अन्य विद्वान एवं उनकी रचनाएं

मृच्छकटिकम् का लेखक शूद्रक को भी चौथी शती का लेखक माना जाता है। नाटक के कथानुसार इसका लेखक एक राजा था लेकिन अभी तक किसी राज वंशावली से इसका समीकरण नहीं किया जा सका है।

विशाखदत्त को भी कुछ विद्वान चौथी शती का मानते है। हालांकि अनेक विद्वानों को इसमें आपत्ति है।[1] विशाखदत्त की रचना मुद्राराक्षस में उस क्रांति का नाटकीय वर्णन है जिससे चंद्रगुप्त मौर्य मगध की गद्दी पर बैठा था। विशाखदत्त ने देवी चंद्रगुप्तम् नामक एक अन्य राजनैतिक नाटक भी लिखा था। इसमें वर्णन है कि राजकुमार चंद्रगुप्त ने किस प्रकार अपनी भाभी के वेष में शक राजा का वध किया और अंत में गुप्तराजवंश की गद्दी पर अधिकार कर लिया।

किरातार्जुनीयम् का प्रणेता भारवि छठीं शती का रचनाकार माना जाता है। भट्टिकाव्य का रचनाकार भट्टि भी इसी युग से सम्बंध रखता था। कुछ विद्वान शतकत्रय के प्रसिद्ध लेखक भतृहरि और भट्टि को एक ही मानते हैं।[2] अभी तक यह विवादास्पद ही है कि वाक्यपदीय के रचयिता वैयाकरण भर्तृहरि को क्या भट्टिकाव्य और शतकत्रय के प्रणेता या प्रणेताओं से अभिन्न माना जाय?[3] इस काल के अन्य लेखक मातृगुप्त और भतृ श्रेष्ठ हैं, किंतु इनके ग्रंथ अब प्राप्य नहीं हैं। भूतश्रेष्ठ हरग्रीववध का प्रणेता प्रतीत होता है। राजतरंगिणी के अनुसार कश्मीर के राजा मातृगुप्त ने इसे इतना अधिक पसंद किया था कि उसने काव्य के नीचे रखवाने के लिए एक सोने की तश्तरी भेजी ताकि कहीं ऐसा न हो कि इसका रस जमीन पर टपक जाय।[4] कालिदास युग के लोकप्रिय नाटककार–सौमिल्ल और कुलपुत्र जो आज केवल नाम शेष रह गये हैं, संभवतः तीसरी शती ई0 में हुए।

इस काल के अभिलेखों में भी काव्य के सुंदर नमूने मिलते है। इनका सिरमौर हरिषेण है। हरिषेण समद्रगुप्त का सेनापति और विदेशमंत्री था। प्रयाग में अशोक स्तम्भ पर उत्कीर्ण उसकी प्रशस्ति निःसंशय बड़ी गुणवाली कविता है। इसका कुछ भाग गद्य में और कुछ पद्य में है। ऐसे काव्य को चम्पू शैली का माना जाता है। इसमें लेखक ने वैदर्भी (सरल) और गौड़ी (अलंकार मय) शैलियों पर अपना प्रभुत्व प्रदर्शित किया है, वैदर्भी का प्रयोग रचना के छन्दोमय तथा दूसरी का प्रयोग गद्यात्मक भाग के लिए हुआ है। इसमें शब्दों का चुनाव बहुत ही विवेक से किया गया प्रतीत होता है। अलंकार सुंदर है। राजपदाभिलाषी राजकुमारों में से पिता के

---

1 कीथ–संस्कृत ड्रामा, पृ0 204
2 जर्नल एशियाटिक, 1923, पृ0 203
3 कीथ–हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ0 116, 176
4 राजतरंगिणी, 2, 115, 260

उत्तराधिकारी के रूप में समुद्रगुप्त के वरण जैसी नाजुक स्थिति का एक प्रभावोत्पादक तथा सुस्पष्ट शब्द चित्र उपस्थित करने में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है।[1]

कुमारगुप्त और बंधु वर्मा की मंदसोर प्रशस्ति का रचयिता वत्सभट्टि ऊँचे दर्जे का कवि नहीं प्रतीत होता, किंतु उसकी कविता साफ सुथरी है तथा ऐसी मूल्यवान सामग्री प्रदान करता है जिससे यह प्रकट होता है कि कालिदास लगभग 475 ई0 के बाद का नहीं हो सकता।[2] चंद्रगुप्त द्वितीय के दरबार में शाव नामक एक अन्य कवि भी था लेकिन उसका कोई अन्य ग्रंथ नहीं मिला।

उपर्युक्त कवि अपने संरक्षकों तथा उनके पूर्वजों के विस्तृत और क्रमबद्ध इतिहास लिखने में अपने को लगाने के बजाय केवल लघु प्रशस्तियाँ लिखकर ही संतुष्ट हो गये। संभवतः वह अपने संरक्षकों की कमियाँ नहीं लिखना चाहते थे। फलतः उन्होंने लघु प्रशस्तियों से अपने को संतुष्ट किया। अनेक इतिहासकार गुप्त युग को प्राचीन भारत का स्वर्ण युग मानते हैं लेकिन बड़े दुःख की बात है कि हमारे पास इस युग की अवातियों का किसी तत्कालीन इतिहासकार द्वारा लिखा पर्याप्त एवं व्यापक विवरण नहीं है।

इतिहास से कथा की ओर मुड़ने पर हमें विष्णु शर्मा का पंचतंत्र उल्लेखनीय प्रतीत होता हैं। विष्णुशर्मा ने पंचतंत्र की गुप्त युग में किसी समय रचना की थी। इस ग्रंथ में आकर्षक कथाओं का सरल किंतु मधुरशैली में वर्णन हुआ है और यह ग्रंथ सांसारिक बुद्धिमत्ता तथा हितकर शिक्षाओं से परिपूर्ण है।

इस युग में संस्कृत साहित्य की पर्याप्त उन्नति हुई, तथापि संस्कृत व्याकरण के ग्रंथों की दृष्टि से यह काल निराशाजनक था। इस काल के पूर्व में रचित पाणिनि, कात्यायन एवं पतंजलि के ग्रंथों की प्रतियोगिता करने वाला कोई व्याकरण ग्रंथ नहीं है। हाँ यह अवश्य है कि बंगाल के चंद्रगोमिन नामक बौद्ध विद्वान ने चंद्र व्याकरण नामक व्याकरण ग्रंथ लिखा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुस्तक बौद्धों में लोकप्रिय हुई लेकिन गुप्त कालीन शास्त्रीय साहित्य में इसका प्रयोग नहीं हुआ। शायद इसका कारण यह था कि–इसमें पाणिनि के वैदिक स्वर और व्याकरण के नियम छोड़ दिये गये है। इसके कुछ सूत्रों को नया रूप दिया गया है और कुछ नये सूत्र बढ़ाये गये हैं। संस्कृत के सबसे अधिक लोकप्रिय कोश, अमरकोश

---

1 फ्लीट, कार्पस इनस्कृप्शनम् इण्डिकेरम्, भाग–3, गुप्तवंश, पृ0 4

2 द एज ऑफ द वाकाटकाज, पृ0 253–257

का प्रणेता अमर सिंह लगभग इसी समय हुआ। छंद शास्त्र में श्रुतिबोध का लेखक कालिदास को बताया जाता है, किंतु यह बहुत संदिग्ध है। वृहत्संहिता के एक प्रकरण में बाराहमिहिर ने भी छंदों का वर्णन किया है। अग्निपुराण के छंदों का परिपादन करने वाला भाग संभवतः गुप्तकाल से ही संबंधित था। यही बात विष्णु धर्मोत्तर पुराण के उस अंश की है जिसमें चित्रकला का वर्णन है और जहाँ भित्ति चित्रों की सतह तैयार करने और उनमें विभिन्न रंगों के प्रयोगों के संबंध में विस्तृत हिदायतें दी गयी है।

धार्मिक एवं दार्शनिक साहित्य की जो परंपरा वैदिक काल से चली आ रही थी, वह आज भी प्रवाहमान थी। वे सृष्टि–प्रलय संबंधी सिद्धांतों और महत्वपूर्ण राजवंशों के इतिहास का वर्णन तथा प्रसिद्ध ऋषियों की जीवनियों तथा कार्यों का प्रतिपादन वर्तमान में भी कर रहे थे। गुप्तयुग के प्रारंभ में पुराणों के रक्षणकर्ताओं ने लगभग 350 ई0 तक कलियुग के राजवंशों का समावेशकर उन्हें अद्यतन बना दिया। उन्होंने शिव एवं विष्णु की महिमा के कुछ अध्याय जोड़े और इस प्रकार शक्ति सम्प्रदाय को लोकप्रिय बनाने में सहायता की। याज्ञवलक्य स्मृति में आचार (कर्मकाण्ड), व्यवहार (दीवानी कानून) और प्रायश्चित पर तुल्य ध्यान दिया गया है।[1] दीवानी कानून और कानून पद्धति गुप्तकाल में तेजी से विकसित होती प्रतीत होती है। नारद, कात्यायन और वृहस्पति के ग्रंथ पूर्ण रूप से इन्हीं पर केंद्रित है। इससे अनुमान लगाना मुश्किल नहीं हैं कि इस युग में भूविवाद एवं अन्य समस्याएं आना प्रारम्भ हो गयी थी। कामदंकीय नीतिसार संभवतः इसी युग की रचना है क्योंकि इसका लेखक गुप्त राजाओं का एक मंत्री था। यह कोई नई रचना नहीं अपितु अधिकांश रूप में कौटिल्य के पुराने ग्रंथ का संक्षेप प्रतीत होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1 एपीग्रैफिया इण्डिका, X

2 वाटर्स, 2

3 एपीग्रैफिया इण्डिका, XII

4 वही, XVIII

5 मैसूर आर्कियोलॉजिकल रिपोर्ट्स, 1929

6 अल्तेकर, एजुकेशन इन ऐंशियण्ट इण्डिया

7 नारद स्मृति अध्याय 5

8 ललित विस्तर एवं आर्यशूर की जातक माला संस्कृत में लिखे गये ग्रंथ है।

9 काव्य मीमांसा

10 कीथ, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर

11 काणे, विविध ज्ञान विस्तार, 1929

12 कीथ–संस्कृत ड्रामा

13 जर्नल एशियाटिक, 1923

14 कीथ–हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर

15 राजतरंगिणी, 2, 115, 260

16 फ्लीट, कार्पस इनस्कृप्शनम् इण्डिकेरम्, भाग–3, गुप्तवंश

17 द एज ऑफ द वाकाटकाज

18 गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, खण्ड 85 में प्रकाशित पुनर्निमित वृहस्पति स्मृति में ये तीनो विषय अंग है।